दृष्टि The Vision

एडिटोरियल

(संग्रह)

मई भाग-2
2021

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम **5**

- संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम 5
- मामलों की विचाराधीनता 7

आर्थिक घटनाक्रम **9**

- सार्वजनिक उपक्रम नीति का पुनर्मूल्यांकन 9
- अनिवार्य लाइसेंसिंग की प्रासंगिकता 10
- तिलहन उत्पादन 12
- भारत में डेयरी क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियाँ 13

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम **15**

- भारत एवं पश्चिमी देशों के मध्य संबंध 15
- भारत अफ्रीका कूटनीतिक संबंध 16
- एक्ट ईस्ट पॉलिसी: कितनी सार्थक! 17

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी **20**

- सूचना प्रौद्योगिकी नियम, 2021 20

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण **22**

- पर्यावरणीय कर 22

सामाजिक न्याय **24**

- महामारी एवं इन्फोडेमिक 24

आंतरिक सुरक्षा **26**

- महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचों की सुरक्षा 26

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

राष्ट्रीय अधिकरण आयोग

हाल ही में केंद्र सरकार द्वारा अधिकरण सुधार (सुव्यवस्थीकरण और सेवा शर्तें) अध्यादेश [Tribunal Reforms (Rationalisation and Conditions of Service) Ordinance] प्रख्यापित किया गया है। इस अध्यादेश के माध्यम से केंद्र ने कई अपीलीय अधिकरणों को समाप्त कर दिया है और उनके अधिकार क्षेत्र को अन्य मौजूदा न्यायिक निकायों में स्थानांतरित कर दिया है।

इस अध्यादेश ने न केवल सामान्य विधायी प्रक्रिया को दरकिनार किया बल्कि इसमें हितधारकों के परामर्श के बिना फिल्म प्रमाणन अपीलीय अधिकरण जैसे कई अधिकरणों को समाप्त करने के प्रावधान किये गए हैं जिससे इस अध्यादेश को तीखी आलोचना का सामना करना पड़ा है।

इसके अलावा यह पहली बार नहीं है जब केंद्र सरकार ने अधिकरणों के कामकाज में हस्तक्षेप करने की कोशिश की है, अधिकरणों के क्षेत्र में कार्यपालिका द्वारा पहले भी हस्तक्षेप होते रहे हैं जिसे शक्तियों के पृथक्करण के उल्लंघन के रूप में माना जा सकता है।

अधिकरणों की स्वतंत्रता से समझौता किये बिना उनके मामलों को विनियमित करने का एक तरीका राष्ट्रीय अधिकरण आयोग (National Tribunals Commission- NTC) की स्थापना करना है।

अधिकरण

- यह एक अर्द्ध-न्यायिक संस्था (Quasi-Judicial Institution) है जिसे प्रशासनिक या कर-संबंधी विवादों को हल करने के लिये स्थापित किया जाता है।
- यह विवादों के अधिनिर्णयन, संघर्षरत पक्षों के बीच अधिकारों के निर्धारण, प्रशासनिक निर्णयन, किसी विद्यमान प्रशासनिक निर्णय की समीक्षा जैसे विभिन्न कार्यों का निष्पादन करती है।
  - 'ट्रिब्यूनल' (Tribunal) शब्द की व्युत्पत्ति 'ट्रिब्यून' (Tribunes) शब्द से हुई है जो रोमन राजशाही और गणराज्य के अंतर्गत कुलीन मजिस्ट्रेटों की मनमानी कार्रवाई से नागरिकों की सुरक्षा करने के लिये एक आधिकारिक पद था।
  - सामान्य रूप से ट्रिब्यूनल का आशय ऐसे व्यक्ति या संस्था से है जिसके पास दावों व विवादों पर निर्णयन, अधिनिर्णयन या निर्धारण का प्राधिकार होता है, भले इसके नामकरण में ट्रिब्यूनल शब्द शामिल हो या ना हो।

संवैधानिक प्रावधान:

- अधिकरण संबंधी प्रावधान मूल संविधान में नहीं थे।
- इन्हें भारतीय संविधान में स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों पर 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा शामिल किया गया।
- इस संशोधन के माध्यम से संविधान में अधिकरण से संबंधित एक नया भाग XIV-A और दो अनुच्छेद जोड़े गए:
  - अनुच्छेद 323A:
    - यह अनुच्छेद प्रशासनिक अधिकरण (Administrative Tribunal) से संबंधित है। ये अधिकरण अर्द्ध-न्यायिक होते हैं जो सार्वजनिक सेवा में काम कर रहे व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तों से संबंधित विवादों को हल करते हैं।
  - अनुच्छेद 323B:
    - यह अनुच्छेद अन्य विषयों जैसे कि कराधान, विदेशी मुद्रा, आयात और निर्यात, भूमि सुधार, खाद्य, संसद तथा राज्य विधानसभाओं के चुनाव आदि के लिये अधिकरणों की स्थापना से संबंधित है।

भारत में अधिकरणों की वर्तमान स्थिति

- स्वतंत्रता का अभाव: विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी रिपोर्ट (रिफॉर्मिंग द ट्रिब्यूनल फ्रेमवर्क इन इंडिया) के अनुसार स्वतंत्रता की कमी भारत में अधिकरणों को प्रभावित करने वाले प्रमुख मुद्दों में से एक है।

नोट :

- प्रारंभ में चयन समितियों के माध्यम से नियुक्ति की व्यवस्था अधिकरणों की स्वतंत्रता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।
- इसके अलावा पुनर्नियुक्ति के मुद्दे और सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रवृत्ति भी अधिकरणों की स्वतंत्रता को प्रभावित करती है।

- गैर-एकरूपता की समस्या: अधिकरणों में सेवा शर्तों, सदस्यों के कार्यकाल, विभिन्न न्यायाधिकरणों के प्रभारी नोडल मंत्रालयों के संबंध में गैर-एकरूपता की समस्या है।
  - ये कारक अधिकरणों के प्रबंधन और प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- संस्थागत मुद्दे: अधिकरण के कामकाज में कार्यकारी हस्तक्षेप प्राय: इसके दिन-प्रतिदिन के कामकाज के लिये आवश्यक वित्त, बुनियादी ढाँचे, कर्मियों और अन्य संसाधनों के प्रावधान के रूप में देखा जाता है।

राष्ट्रीय अधिकरण आयोग और इसका प्रभाव

- NTC का विचार सबसे पहले एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ मामले(1997) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत किया गया था।
- उद्देश्य: NTC की कल्पना अधिकरणों के कामकाज, सदस्यों की नियुक्ति और उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की निगरानी तथा ट्रिब्यूनल की प्रशासनिक एवं ढाँचागत जरूरतों का ध्यान रखने के लिये एक स्वतंत्र निकाय के रूप में की गई है।
- एकरूपता: NTC सभी न्यायाधिकरणों में समान प्रशासन का समर्थन करेगा। यह ट्रिब्यूनल की दक्षता और उनकी अपनी प्रशासनिक प्रक्रियाओं के लिये प्रदर्शन मानक निर्धारित कर सकता है।
- शक्तियों का पृथक्करण सुनिश्चित करना: NTC को नियमों के अधीन सदस्यों के वेतन, भत्ते और अन्य सेवा शर्तों को निर्धारित करने का अधिकार देने से न्यायाधिकरणों की स्वतंत्रता बनाए रखने में मदद मिलेगी।
  - NTC विभिन्न न्यायाधिकरणों द्वारा किये गए प्रशासनिक और न्यायिक कार्यों को अलग करने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।
- सेवाओं का विस्तार: एक बोर्ड, एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) और एक सचिवालय से युक्त NTC की एक 'निगमीकृत' संरचना इसे अपनी सेवाओं को बढ़ाने और देश भर के सभी न्यायाधिकरणों को आवश्यक प्रशासनिक सहायता प्रदान करने की अनुमति देगी।
- स्वायत्त निरीक्षण: NTC अनुशासनात्मक कार्यवाही और अधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति से संबंधित प्रक्रिया को विकसित और संचालित करने के लिये एक स्वतंत्र भर्ती निकाय के रूप में कार्य कर सकता है।
  - एक NTC प्रभावी रूप से नियुक्ति प्रणाली में एकरूपता लाने में सक्षम होगा और यह सुनिश्चित करेगा कि यह स्वतंत्र तथा पारदर्शी हो।

आगे की राह:

- कानूनी समर्थन: जवाबदेही शासन के लिये एक स्वतंत्र निरीक्षण निकाय विकसित करने हेतु एक कानूनी ढाँचे की आवश्यकता होती है जो इसकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता की रक्षा करता है।
  - इसलिये NTC को एक संवैधानिक संशोधन के माध्यम से स्थापित किया जाना चाहिये या एक ऐसे क़ानून द्वारा समर्थित होना चाहिये जो इसे कार्यात्मक, परिचालन और वित्तीय स्वतंत्रता की गारंटी देता है।
- राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) मुद्दे से सीख: NTC को अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिये न्यायपालिका द्वारा निर्धारित मानकों का पालन करना होगा।
  - अत्यधिक कार्यकारी हस्तक्षेप के कारण, राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को न्यायपालिका की स्वतंत्रता बाधा उत्पन्न करने वाले निर्णय के रूप में देखा गया।
  - इस प्रकार कार्यपालिका के साथ-साथ बार (Bar) को भी प्रासंगिक हितधारक होने के नाते किसी भी NTC का एक हिस्सा बनना चाहिये लेकिन इस प्रक्रिया में न्यायिक सदस्यों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।
- पुनर्नियुक्ति की प्रक्रिया से दूरी बनाना: NTC को ट्रिब्यूनल की स्वतंत्रता पर इसके प्रभाव के कारण ट्रिब्यूनल सदस्यों की पुनर्नियुक्ति की प्रणाली को भी दूर करना चाहिये।

नोट :

निष्कर्ष

- यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि न्यायालयों से बढ़ते मामलों के बोझ को कम करने के लिये ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई थी। भारत में न्यायाधिकरण प्रणाली में सुधार भी सदियों पुरानी समस्या का समाधान करने की कुंजी हो सकती है जो अभी भी भारतीय न्यायिक प्रणाली को न्यायिक देरी और बैकलॉग जैसी समस्याओं द्वारा पंगु बना देती है ।
- इस संदर्भ में NTC की स्थापना निश्चित रूप से वर्तमान ट्रिब्यूनल सिस्टम के एक मौलिक पुनर्गठन को लागू करेगी।

मामलों की विचाराधीनता

कोविड-19 महामारी ने भारत में सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के लगभग प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है और जाहिर तौर पर न्यायपालिका भी इससे अछूती नहीं रही है। मार्च 2020 के बाद से अब तक न्यायालयों ने कुल मिलाकर भी अपने केसलोड के साथ काम ही नहीं किया है।

बहरहाल जब मार्च 2020 का लॉकडाउन घोषित किया गया था तब सभी स्तरों पर मामलों की संख्या 3.68 करोड़ थी और हाल ही में यह संख्या 4.42 करोड़ तक पहुँच चुकी है।

भारतीय न्यायालयों में अत्यधिक कार्य सूची के कारण उत्पन्न होने वाली मामलों के निपटान में यह देरी और अक्षमता लंबे समय से चिंता का विषय रही है तथा यह स्थिति इस कहावत को चरितार्थ करती नज़र आ रही है कि "न्याय में देरी न्याय से वंचित होना है" (Justice delayed is justice denied)।

इस प्रकार न्यायिक सुधारों को यदि गंभीरता से लिया जाए तो शीघ्र एवं प्रभावी न्याय प्रदान किया जा सकता है।

देरी के कारण

- स्थायी रिक्तियाँ: भारत भर में न्यायालयों की स्वीकृत संख्या के हिसाब से रिक्तियाँ भरी नहीं जाती हैं और सबसे खराब प्रदर्शन करने वाले राज्यों में ये रिक्तियाँ 30 प्रतिशत से अधिक हैं।
  - इसके कारण निचली अदालतों में मुकदमे की औसत प्रतीक्षा अवधि लगभग 10 वर्ष तथा उच्च न्यायालयों में 2-5 वर्ष है।
- अधीनस्थ न्यायपालिका की खराब स्थिति: देश भर में ज़िला अदालतें भी अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे और खराब कामकाजी परिस्थितियों से ग्रसित हैं, जिनमें भारी सुधार की आवश्यकता है, विशेष रूप से तब जब वे उच्च न्यायपालिका द्वारा उठाई गई डिजिटल अपेक्षाओं को पूरा करना चाहते हैं।
  - इसके अलावा न्यायालयों, चिकित्सकों एवं ग्राहकों के मामले में महानगरों और उससे बाहर के लोगों के बीच एक डिजिटल डिवाइड भी मौजूद है। इस जर्जर बुनियादी ढाँचे और डिजिटल निरक्षरता की बाधाओं को दूर करने में वर्षों लग सकते हैं।
- सरकार, सबसे बड़ी याचिकाकर्त्ता: खराब प्रारूप वाले आदेशों के परिणामस्वरूप कर राजस्व सकल घरेलू उत्पाद के 4.7 प्रतिशत के बराबर है और यह लगातार बढ़ रहा है।
  - न्यायालय में लंबित याचिकाओं के कारण लगभग 50,000 करोड़ रुपए की परियोजनाएँ अधर में हैं और इसके चलते निवेश में भी कमी आ रही है। ये दोनों जटिलताएँ न्यायालयों द्वारा दिये गए निषेधाज्ञा और स्थगन आदेशों (मुख्यत: खराब प्रारूप और खराब तर्क वाले आदेश) के कारण उत्पन्न हुई हैं।
- कम बजटीय आवंटन: न्यायपालिका को आवंटित बजट सकल घरेलू उत्पाद के 0.08 और 0.09% के बीच है। केवल चार देशों (जापान, नॉर्वे, ऑस्ट्रेलिया और आइसलैंड) का बजटीय आवंटन कम है लेकिन भारत की तरह इन देशों में न्याय में देरी की समस्या नहीं है।
- लंबे अवकाश की प्रथा: आमतौर पर निचली आदालतों में विद्यमान लंबे अवकाश की प्रथा भी मामलों के विचाराधीन होने का एक प्रमुख कारण है।
- मूल्यांकन का अभाव: नया कानून बनाते समय इसका कोई न्यायिक प्रभाव आकलन नहीं होता है कि सरकार द्वारा न्यायपालिका पर कितना बोझ डाला जाना है।
  - अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

नोट :

- न्यायिक नियुक्ति में देरी: उच्च न्यायालयों में रिक्त पदों को भरने के लिये कॉलेजियम (Collegium) द्वारा की गई सिफारिशें सरकार के पास सात महीने से एक वर्ष तक लंबित रही हैं।
  - सभी 25 उच्च न्यायालयों में स्वीकृत न्यायाधीशों की संख्या 1,080 है। हालाँकि मार्च 2021 तक इनमें से केवल 661 न्यायाधीश (419 रिक्तियाँ) ही कार्यरत हैं।
  - सरकार का मानना है कि इन खाली पदों पर नियुक्ति प्रक्रिया में देरी के लिये कॉलेजियम प्रणाली और उच्च न्यायालय ज़िम्मेदार हैं।

आगे की राह

- पर्याप्त बजट: नियुक्तियों और सुधारों के लिये महत्त्वपूर्ण और आवश्यक व्यय की आवश्यकता होगी।
  - पंद्रहवें वित्त आयोग और इंडिया जस्टिस रिपोर्ट/भारत न्याय रिपोर्ट 2020 की सिफारिशों ने इस मुद्दे को उठाया है तथा वित्त का निर्धारण हेतु उपाय सुझाए हैं।
- प्रसुप्त/निष्क्रिय जनहित याचिकाएँ: सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सभी 'हाइबरनेटिंग' (प्रसुप्त/निष्क्रिय) जनहित याचिकाओं (जो उच्च न्यायालय के समक्ष 10 से अधिक वर्षों से लंबित हैं) तथा महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक नीति या कानून के प्रश्न से संबंधित नहीं हैं, का संक्षेप में ही निपटान करना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये।
- ऐतिहासिक असमानताओं में सुधार करना: न्यायपालिका सम्बन्धी सुधारों में न्यायपालिका के भीतर सामाजिक असमानताओं को दूर करना भी शामिल होना चाहिये।
  - महिला न्यायाधीशों और ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहने वाली जातियों एवं वर्गों से संबंधित न्यायाधीशों को अंततः सीटों का उचित हिस्सा दिया जाना चाहिये।
- वैकल्पिक विवाद समाधान को बढ़ावा देना: प्रत्येक मामले को न्यायालय परिसर के भीतर हल करना अनिवार्य नहीं है बल्कि अन्य संभावित प्रणालियों का भी उपयोग किया जाना चाहिये। यह अनिवार्य किया जाना चाहिये कि सभी वाणिज्यिक मुकदमों पर तभी विचार किया जाएगा जब याचिकाकर्त्ता की ओर से एक हलफनामा प्रस्तुत किया जाए जिसमें यह उल्लेख किया गया हो कि मध्यस्थता और सुलह का प्रयास किया गया है और विफल हो गया है।
  - वैकल्पिक विवाद समाधान, लोक अदालतों, ग्राम न्यायालयों जैसे तंत्रों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिये।
    - वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र को बढ़ावा देने के लिये मध्यस्थता और सुलह अधिनियम (Arbitration and Conciliation) में तीन बार संशोधन किया गया है ताकि सुलह या मध्यस्थता द्वारा मुकदमेबाज़ी को कम किया जा सके।
- नियुक्ति प्रणाली को सुव्यवस्थित करना: रिक्तियों को बिना किसी अनावश्यक विलंब के भरा जाना चाहिये।
  - न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये एक उचित समय-सीमा निर्धारित करके इन नियुक्तियों के लिये अग्रिम सिफारिशें की जानी चाहिये।
  - अखिल भारतीय न्यायिक सेवा (All India Judicial Service) का गठन भारत को एक बेहतर न्यायिक प्रणाली स्थापित करने में निश्चित रूप से मदद कर सकता है।

निष्कर्ष

अदालतें लंबित मामले रूपी बम पर बैठी हैं ऐसे में न्यायपालिका को सक्षम बनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस प्रकार, भारतीय न्यायपालिका की वर्तमान स्थिति के बारे में समग्र और यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

नोट :

आर्थिक घटनाक्रम

सार्वजनिक उपक्रम नीति का पुनर्मूल्यांकन

हाल ही में सरकार ने घोषणा की है कि वह मिशन COVID सुरक्षा के तहत Covaxin के निर्माण हेतु विनिर्माण क्षमता बढ़ाने के लिये तीन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (PSE) का उपयोग करेगी।

इसके अलावा, इस्पात, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्रों के कई सार्वजनिक उपक्रमों ने तरल चिकित्सा ऑक्सीजन उपलब्ध कराने के साथ-साथ इसके परिवहन व सरकार के प्रयासों को पूरा करने में मदद की है।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने अपनी स्थापना के बाद से देश के उच्च विकास और समान सामाजिक-आर्थिक विकास को प्राप्त करने के उद्देश्य को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। देश के आर्थिक और सामाजिक ताने-बाने में उनका निरंतर योगदान वर्तमान परिदृश्य में और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है।

इसलिये हाल के निर्णय ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की उपस्थिति को कम करने और निजी क्षेत्र के लिये नए निवेश स्थान बनाने की सरकार की नीति पर बहस को भी पुनर्जीवित कर दिया है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की प्रासंगिकता

- भारतअभी तक एक विकसित अर्थव्यवस्था नहीं: ऐतिहासिक रूप से सार्वजनिक उपक्रमों ने अर्थव्यवस्था के साथ-साथ उद्योगों के लिये भी एक मज़बूत बुनियादी ढाँचा आधार प्रदान किया है।
  - इसके अलावा सार्वजनिक उपक्रमों को सामाजिक-आर्थिक निष्पक्षता के साथ स्थापित किया गया था और यह केवल लाभ पर आधारित नहीं थे, जिसने अर्थव्यवस्था के लिये एक सही प्रकार का बुनियादी ढाँचा तैयार किया।
  - इसलिये सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित नीति पर शायद फिर से विचार करने की आवश्यकता है।
- रोज़गार सृजन: सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को औपचारिक क्षेत्र में रोज़गार उत्पन्न करने वालों में से एक माना जाता है जो सुरक्षित और लाभकारी रोज़गार प्रदान करते हैं।
- संपत्ति का निर्माण: स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में राष्ट्रीय संपत्ति के निर्माण में सार्वजनिक उपक्रमों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है, खासकर उन क्षेत्रों में जिन्हें निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर उच्च जोखिम और कम रिटर्न के रूप में माना जाता है।
- वैश्विक पदचिह्न का विस्तार: भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम पहले से ही मध्य पूर्व, अफ्रीका, यूरोप, एशिया, लैटिन अमेरिका और उत्तरी अमेरिका जैसे क्षेत्रों में दुनिया भर में मौजूद हैं तथा भारतीय CPSEs and PSEs के लिये अपने वैश्विक पदचिह्न का विस्तार करने की जबरदस्त संभावना है।

आगे की राह

- पीपीपी मॉडल को अपनाना: PSEs नीति पर फिर से विचार करने की ज़रूरत है लेकिन उनके कामकाज के संदर्भ में और अधिक विचार करने की जरूरत है।
  - इन कंपनियों को बिना सरकारी हस्तक्षेप के एक पेशेवर बोर्ड द्वारा चलाया जाना चाहिये। इन सार्वजनिक उपक्रमों को पीपीपी मॉडल के तहत या संयुक्त उद्यम के रूप में भी चलाया जा सकता है।
- प्रणालीगत सुधार: सार्वजनिक उपक्रमों के भविष्य के विकास के लिये सरकार को निम्नलिखित कुछ प्रमुख क्षेत्रों में सहायता प्रदान करने पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है: सार्वजनिक उपक्रमों का पुनरुद्धार, भूमि, वित्त /बैंकिंग /कार्यशील पूंजी, उपयोगिताओं और सेवाओं, पर्यावरणीय मुद्दों और अनुसंधान एवं विकास।

नोट :

- प्रतिस्पर्धात्मकता मॉडल अपनाना: सीआईआई शोध रिपोर्ट- 'द राइज ऑफ द एलीफेंट' ने CPSEs को कुशल और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी संस्थाओं में बदलने के लिये एक प्रतिस्पर्धात्मक मॉडल अपनाने की सिफारिश की है। मॉडल के प्रमुख तत्त्व हैं:
  - रोडमैप और उद्देश्य में स्पष्टता
  - भूमिका का सीमांकन
  - परिचालन स्वतंत्रता
  - स्वतंत्र और अधिकार प्राप्त बोर्ड
  - लेवल प्लेइंग फील्ड
  - भविष्य के लिये तैयारी

निष्कर्ष

माना कि अर्थव्यवस्था के विकास में निजी क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने जो योगदान दिया है, उसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है, खासकर आज के कठिन समय में। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने बार-बार देश के विकास में अपना लोहा मनवाया है अत: इनकी भूमिका को सीमित करने की योजना पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

अनिवार्य लाइसेंसिंग की प्रासंगिकता

संदर्भ

हाल ही में भारत और दक्षिण अफ्रीका ने कोविड-19 के टीकों, दवाओं, चिकित्सा विज्ञान और संबंधित प्रौद्योगिकियों पर ट्रिप्स समझौते के प्रमुख प्रावधानों को लचीला बनाने का प्रस्ताव दिया है। इस प्रस्ताव को अमेरिका ने भी अपना समर्थन दिया है।

- उपर्युक्त प्रस्ताव सदस्य देशों को विश्व व्यापार संगठन में कानूनी संरक्षण प्रदान करेगा यदि उनके घरेलू बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Right- IPR) कानून इस विषय पर लागू नहीं होते हैं।
- इस प्रस्ताव के पीछे मूल विचार यह सुनिश्चित करना है कि बौद्धिक संपदा अधिकार से जुड़े कानून कोविड-19 से मुकाबला करने के लिये आवश्यक चिकित्सा उत्पादों के उत्पादन में बाधा न बने। हालाँकि, इस प्रस्ताव से भारत में कोविड-19 टीके की कमी की समस्या का समाधान होने की संभावना नहीं है।
- टीके से जुड़े बौद्धिक संपदा अधिकार में छूट प्राप्त करने की कोशिश करने के बजाय भारत सरकार को टीका निर्माताओं को उत्पादन (अनिवार्य लाइसेंस के माध्यम से) का विस्तार करने तथा खरीद एवं वितरण में अक्षमताओं को कम कर चिकित्सा तंत्र को सक्षम बनाने की दिशा में अग्रसर होना चाहिये।

क्या है बौद्धिक संपदा अधिकार?

- व्यक्तियों को उनके बौद्धिक सृजन के परिप्रेक्ष्य में प्रदान किये जाने वाले अधिकार ही बौद्धिक संपदा अधिकार कहलाते हैं। वस्तुत: ऐसा समझा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का बौद्धिक सृजन (जैसे साहित्यिक कृति की रचना, शोध, आविष्कार आदि) करता है तो सर्वप्रथम इस पर उसी व्यक्ति का अनन्य अधिकार होना चाहिये। चूँकि यह अधिकार बौद्धिक सृजन के लिये ही दिया जाता है, अत: इसे बौद्धिक संपदा अधिकार की संज्ञा दी जाती है।

ट्रिप्स समझौता और भारतीय कानून

- विश्व व्यापार संगठन में वर्ष 1995 में ट्रिप्स समझौते पर वार्ता हुई थी। इसके तहत सभी हस्ताक्षरकर्त्ता देशों को इससे जुड़े घरेलू कानून बनाने की आवश्यकता है।
  - यह बौद्धिक संपदा हेतु सुरक्षा के न्यूनतम मानकों की गारंटी देता है।
  - इस तरह की कानूनी स्थिरता नवोन्मेषकों को कई देशों में अपनी बौद्धिक संपदा का मुद्रीकरण करने में सक्षम बनाती है।

नोट :

- वर्ष 2001 में, विश्व व्यापार संगठन द्वारा 'दोहा घोषणा' पर हस्ताक्षर किये गए। इसके तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल की स्थिति में सरकारें कंपनियों एवं निर्माताओं को अपने पेटेंट लाइसेंस देने के लिये मजबूर कर सकती हैं, भले ही उन्हें नहीं लगता कि प्रस्तावित मूल्य स्वीकार्य है।
  - यह प्रावधान जिसे आमतौर पर "अनिवार्य लाइसेंसिंग" कहा जाता है, ट्रिप्स समझौते के तहत पहले से शामिल था किंतु, दोहा घोषणा ने इसके उपयोग को स्पष्ट किया था।
- वर्ष 1970 के भारतीय पेटेंट अधिनियम की धारा 92 के तहत, केंद्र सरकार के पास राष्ट्रीय आपातकाल या अत्यधिक आवश्यक परिस्थितियों के मामले में किसी भी समय अनिवार्य लाइसेंस जारी करने हेतु अनुमति देने की शक्ति है।

विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (World Intellectual Property Organisation- WIPO)

- यह संयुक्त राष्ट्र की सबसे पुरानी एजेंसियों में से एक है।
- इसका गठन वर्ष 1967 में रचनात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और विश्व में बौद्धिक संपदा संरक्षण को बढ़ावा देने के लिये किया गया था।
- इसका मुख्यालय जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड में है।
- संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देश इसके सदस्य बन सकते हैं, लेकिन यह बाध्यकारी नहीं है।
- वर्तमान में 193 देश इस संगठन के सदस्य हैं।
- भारत वर्ष 1975 में इस संगठन का सदस्य बना था।

ट्रिप्स के प्रावधानों में छूट का भारत में कोविड-19 की स्थिति पर प्रभाव

- जटिल बौद्धिक संपदा तंत्र: टीके के विकास और निर्माण की प्रक्रिया में कई चरण होते हैं और इसमें एक जटिल बौद्धिक संपदा तंत्र शामिल होता है।
  - अलग-अलग चरणों में बौद्धिक संपदा अधिकार से जुड़े अलग-अलग तरह के कानून लागू होते हैं।
  - टीके को बनाने के फॉर्मूले को एक 'ट्रेड सीक्रेट' (Trade Secret) के रूप में संरक्षित किया जा सकता है और नैदानिक परीक्षणों के आँकड़ों को वैक्सीन सुरक्षा और प्रभावकारिता का परीक्षण करने के लिये कॉपीराइट नियमों के अंतर्गत संरक्षित किया जा सकता है।
- जटिल निर्माण तंत्र: टीकों निर्माण प्रक्रिया के तहत समग्र प्रक्रिया को डिज़ाइन करने, आवश्यक कच्चा माल प्राप्त करने, उत्पादन सुविधाओं का निर्माण करने तथा नियामक अनुमोदन प्राप्त करने के लिये आवश्यक नैदानिक परीक्षण आयोजित करने की आवश्यकता होती है।
  - इस तरह स्वयं निर्माण प्रक्रिया में ही कई चरण होते हैं। अत: केवल पेटेंट में छूट प्राप्त कर लेने से निर्माताओं को तुरंत टीके का उत्पादन शुरू करने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता है।

आगे की राह: अनिवार्य लाइसेंसिंग की प्रासंगिकता

- टीके की कमी को दूर करना: अमीर देशों ने अब तक लगभग 80 प्रतिशत टीके की आपूर्ति पर कब्ज़ा जमाया हुआ है।
  - जबकि भारत को अपनी 18 वर्ष से अधिक आयु की 900 मिलियन से अधिक की आबादी के लिये जल्द-से-जल्द लगभग 1.8 बिलियन खुराक सुनिश्चित करने हेतु अपने उत्पादन को तेज़ी से बढ़ाने की आवश्यकता है।
  - इस प्रकार, अनिवार्य लाइसेंसिंग का उपयोग दवाओं और अन्य चिकित्सीय आपूर्ति को बढ़ाने के लिये किया जा सकता है।
- स्वैच्छिक लाइसेंसिंग: कोविड-19 से संबंधित चिकित्सीय उपकरणों की तकनीक एवं दवाओं के अनिवार्य लाइसेंस के मुद्दे पर सकारात्मक रूप से चर्चा कर दवा कंपनियों को स्वेच्छा से लाइसेंस देने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।
  - उदाहरण के लिये कोवैक्सिन (Covaxin) को व्यापक रूप से लाइसेंस प्रदान करने से भारत 'विश्व की फार्मेसी' होने की उम्मीद पर खरा उतरने में सक्षम होगा और इससे विकसित देशों पर अपनी वैक्सीन प्रौद्योगिकी को विकासशील देशों में स्थानांतरित करने हेतु भी दबाव पड़ेगा।
  - इस प्रकार सरकार को राष्ट्रीय आपूर्ति को बढ़ावा देने के लिये न केवल कोवैक्सिन की तकनीक को घरेलू दवा कंपनियों को हस्तांतरित करना चाहिये साथ ही, इसे विदेशी निगमों को भी हस्तांतरित करना चाहिये।

नोट :

- अनुकूल नियामक वातावरण: भारत में टीकों की आपूर्ति से जुड़े नियामक संस्थाओं को अधिक भरोसेमंद एवं इससे जुड़ी मंज़ूरी प्रक्रिया को सुगम बनाने की आवश्यकता है। इससे भारत में टीके की आपूर्ति की कमी को जल्द-से-जल्द दूर करने में मदद मिल सकती है।

निष्कर्ष

भारत ने ऐतिहासिक रूप से विश्व व्यापार संगठन में अनिवार्य लाइसेंसिंग जैसे मुद्दे को मुख्यधारा में लाने में अग्रणी भूमिका निभाई है। इस वैश्विक और राष्ट्रीय स्वास्थ्य आपातकाल की स्थिति में सरकार को अनिवार्य लाइसेंस को बढ़ावा देना चाहिये।

तिलहन उत्पादन

विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों ने विभिन्न कृषिगत मुद्दों के संदर्भ में भारत पर सवाल उठाया, जिसमें दालों के आयात पर निरंतर प्रतिबंध, गेहूं का भंडारण, अल्पकालिक फसल ऋण, निर्यात सब्सिडी या विभिन्न फसलों के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य आदि शामिल हैं।

हालाँकि नवीनतम मुद्दा घरेलू तिलहन उत्पादन बढ़ाने की भारत की महत्त्वाकांक्षी योजना को लेकर सामने आया है। हाल के निर्देशों के अनुसार, सरकार ने वनस्पति तेल (ताड़, सोयाबीन एवं सूरजमुखी के तेल) के आयात पर निर्भरता कम करने के लिये लगभग 10 बिलियन डॉलर का निवेश करने की योजना बनाई है।

विश्व व्यापार संगठन के किसी अन्य मुकदमे में देश को फँसने से बचाने के लिये, भारत को यह सुनिश्चित करना चाहिये कि इसके द्वारा दिए जाने वाले प्रोत्साहन स्वीकृति सीमा (Permissible Limits) के भीतर हैं।

हालाँकि लंबी अवधि में भारत को ऐसे तरीके खोजने होंगे जहाँ वह उत्पादकों को प्रत्यक्ष वित्तीय प्रोत्साहन या मौद्रिक सहायता दिये बिना भी घरेलू तिलहन उत्पादन को बढ़ावा दे सके।

तिलहन आयात से संबद्ध चुनौतियाँ

- व्यापार नीति: यह सर्वविदित है कि सामान्यतया वनस्पति तेल का आयात अत्यधिक एवं अनियंत्रित ढंग से संचालित होता है।
  - इसके कारण, आयातक देश में कम कीमत पर आयातित तेलों को बड़े पैमाने पर जमा कर लेते हैं, इससे घरेलू तिलहन फसल की कीमतों में कमी आती है एवं तिलहन उत्पादक इससे हतोत्साहित होते हैं।
- ऋण अवधि और आयात ऋण-जाल: विदेशी आपूर्तिकर्त्ता भारतीय आयातकों को 90 से 150 दिनों का ऋण प्रदान करते हैं; लेकिन कार्गो लगभग 10 दिनों (ताड़ के तेल) या 30 दिनों (सॉफ्ट ऑयल) में भारतीय तटों पर पहुँच जाता है।
  - भारतीय आयातक शीघ्र ही आयातित माल बेच देते हैं एवं ऋण चुकता करने की शेष अवधि तक उन पैसों का भुगतान करने से पहले वह उन्हें बड़े पैमाने पर सट्टा या अन्य व्यापार में लगा देता है। इससे कभी न खत्म होने वाला आयात चक्र बना रहता है।
- उत्पादन में गतिरोध: भारी मांग के बावजूद भारत में तिलहन उत्पादन 31-32 मिलियन टन तक ही हो पा रहा है। हमें इस गतिरोध को दूर करने और उत्पादन लक्ष्य को वर्ष भर में बहुत अधिक नहीं तो कम-से-कम 20 लाख टन तक बढ़ाने की आवश्यकता है।

आगे की राह

- ग्रीन बॉक्स सब्सिडी बढ़ाना: तिलहन फसलों की जैविक एवं अजैविक किस्मों के विकास और उपज में सफलता के लिये अन्य संभावित क्षेत्रों के साथ-साथ तिलहन फसलों में सार्वजनिक अनुसंधान खर्च बढ़ाने की आवश्यकता है।
  - किस्म/वैरायटी आधारित मांग को पूरा करने के लिये उपज बढ़ाने हेतु तिलहन फसलों विशेष रूप से मूंगफली में बीज शृंखला को मज़बूत बनाने से अत्यधिक मदद मिलेगी।
- स्मार्ट कृषि: तिलहन फसलों के लिये महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक क्षेत्रों में प्रमुख भौतिक (उर्वरक, कीटनाशक), वित्तीय (ऋण सुविधा, फसल बीमा) और तकनीकी इनपुट (विस्तार सेवाएँ) की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- विपणन सुधार: तिलहन और खाद्य तेल हेतु एक प्रतिस्पर्द्धी बाज़ार सुनिश्चित करने के लिये अनुबंध कृषि एवं उत्पादन तथा प्रसंस्करण में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (जैसे बाज़ार सुधार एवं नीतियाँ) को लागू किया जाना चाहिये। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में अनुचित प्रतिस्पर्द्धा से बचने के लिये पर्याप्त सुरक्षात्मक उपायों को अपनाए जाने की आवश्यकता है।

नोट :

- अनिश्चितता को कम करना: वनस्पति तेल की आपूर्ति में अनिश्चितता और अत्यधिक आयात को कम करने से घरेलू तिलहन की कीमतों पर तुरंत लाभकारी प्रभाव पड़ेगा।
  - इसके अलावा खतरनाक ऋण-जाल को रोकने के लिये, खाद्य तेल के आयात हते क्रेडिट अवधि ताड़ के तेल के लिये अधिकतम 30 दिनों और सॉफ्ट ऑयल के लिये अधिकतम 45 दिनों तक सीमित होनी चाहिये।
  - यह स्वत: अत्यधिक आयात, अति-व्यापार और अनिश्चितता को हतोत्साहित करेगा तथा उत्पादकों को अधिक उपज, कृषि संबंधी प्रथाओं में सुधार करने एवं उच्च पैदावार के लिये प्रोत्साहित करेगा।

निष्कर्ष

प्रौद्योगिकी एवं सेवाओं के वितरण तथा संस्थानों को मजबूत करने के माध्यम से स्थानीय क्षमताओं में सुधार होगा साथ ही कृषि की सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता तिलहन फसल की अर्थव्यवस्था में वांछित वृद्धि लाएगी। इस वृद्धि से देश को अत्यधिक लाभ होगा क्योंकि तिलहन फसलें मुख्य रूप से वंचित क्षेत्रों में उगाई जाती हैं।

भारत में डेयरी क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियाँ

संदर्भ

कोविड -19 महामारी की दूसरी लहर ने दुग्ध उत्पादकों की स्थिति को बदतर कर दिया है। महामारी के दौरान शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में परिवारों द्वारा दूध की घर-घर बिक्री स्वत: बंद हो गई है, जिससे किसानों को डेयरी उत्पादन नजदीक के डेयरी सहकारी समितियों को बहुत कम कीमत पर बेचने के लिये मजबूर होना पड़ रहा है।

इसके अलावा, दुकानों के बंद होने से दूध और दूध उत्पादों की मांग में कमी आई है, जबकि पशुओं के चारे की भारी कमी ने लागत को बढ़ा दिया है। साथ ही, कोविड-19 के कारण निजी पशु चिकित्सा सेवाएँ लगभग बंद हो गई हैं, जिससे दुधारू पशुओं की मौत हो रही है।

भारत में दूध के उत्पादन और बिक्री की प्रकृति को देखते हुए दुग्ध उत्पादकों को मामूली झटके भी लग सकते हैं क्योंकि दूध और दुग्ध उत्पादों की मांग उपभोक्ताओं के रोज़गार और आय में बदलाव के प्रति संवेदनशील है। इसलिये भारतीय अर्थव्यवस्था के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को बचाने के लिये बहुत कुछ करने की जरूरत है।

डेयरी क्षेत्र को संभालने की ज़रूरत

- खेत पर निर्भर आबादी में वैसे किसान और खेतिहर मज़दूर भी शामिल हैं जो डेयरी और पशुधन पर निर्भर हैं। इनकी संख्या लगभग 70 मिलियन है।
- इसके अलावा मवेशी और भैंस पालन में कुल कार्यबल 7.7 मिलियन में 69 प्रतिशत महिला श्रमिक हैं।
- कृषि से सकल मूल्य वर्धित (जीवीए) में पशुधन क्षेत्र का योगदान 2019-20 में 28 प्रतिशत था। दुग्ध उत्पादन में प्रति वर्ष 6 प्रतिशत की वृद्धि दर से किसानों को सूखे और बाढ़ के दौरान एक बड़ा आर्थिक सहारा प्राप्त होता है।
- प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल खराब होने पर दूध का उत्पादन बढ़ जाता है क्योंकि किसान तब पशुपालन पर अधिक निर्भर होते हैं।

इस क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियाँ

- अदृश्य श्रम: किसान के लिये पाँच में से दो दुधारू पशु आजीविका के लिये रखते हैं। ऐसे में परिवार के उपयोग हेतु दुग्ध उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम परिवार की अवैतनिक या औपचारिक रूप से बेरोज़गार महिलाओं के हिस्से आता।
  - उनमें से भूमिहीन और सीमांत किसानों के पास दूध के लिये खरीदारों की कमी होने पर आजीविका का कोई विकल्प नहीं है।
- डेयरी क्षेत्र की असंगठित प्रकृति: गन्ना, गेहूं और चावल उत्पादक किसानों के विपरीत पशुपालक असंगठित हैं और उनके पास अपने अधिकारों की वकालत करने के लिये राजनीतिक ताकत नहीं है।
- अलाभकारी मूल्य निर्धारण: हालाँकि उत्पादित दूध का मूल्य भारत में गेहूं और चावल के उत्पादन के संयुक्त मूल्य से अधिक है लेकिन उत्पादन की लागत और दूध के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य का कोई आधिकारिक प्रावधान नहीं है।

नोट :

- अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव: भले ही डेयरी सहकारी समितियाँ देश में दूध के कुल विपणन योग्य अधिशेष में लगभग 40 प्रतिशत का योगदान करती हैं, लेकिन वे भूमिहीन या छोटे किसानों का पसंदीदा विकल्प नहीं हैं। ऐसा इसलिये है क्योंकि डेयरी सहकारी समितियों द्वारा खरीदा गया 75 प्रतिशत से अधिक दूध अपने न्यूनतम मूल्य पर है।
- अपर्याप्त सरकारी प्रयास: अगस्त 2020 में विभाग ने भारत में 2.02 लाख कृत्रिम गर्भाधान (Artificial nsemination- AI) तकनीशियनों की आवश्यकता की सूचना दी, जबकि उपलब्धता केवल 1.16 लाख है।
  - किसान क्रेडिट कार्ड कार्यक्रम में डेयरी किसानों को शामिल किया गया है। भारत में 230 दुग्ध संघों के कुल 1.5 करोड़ किसानों में से अक्टूबर 2020 तक डेयरी किसानों के ऋण आवेदनों का एक-चौथाई भी बैंकों को नहीं भेजा गया था।
  - किसानों को कोविड-19 के कारण आय के नुकसान की भरपाई के लिये डेयरी को मनरेगा के तहत लाया गया था। हालाँकि 2021-22 के लिये बजटीय आवंटन में 34.5 प्रतिशत की कटौती की गई थी।

आगे की राह

- उत्पादकता में वृद्धि: पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने, बेहतर स्वास्थ्य देखभाल और प्रजनन सुविधाओं और डेयरी पशुओं के प्रबंधन की आवश्यकता है। इससे दूध उत्पादन की लागत कम हो सकती है।
  - साथ ही पशु चिकित्सा सेवाओं, कृत्रिम गर्भाधान (Artificial nsemination- AI), चारा और किसान शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करके दूध उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। सरकार और डेयरी उद्योग इस दिशा में अहम भूमिका निभा सकते हैं।
- उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन बुनियादी ढाँचे में वृद्धि: यदि भारत को डेयरी निर्यातक देश के रूप में उभरना है, तो उचित उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन बुनियादी ढाँचे को विकसित करना अनिवार्य है, जो अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है।
  - इस प्रकार गुणवत्ता और सुरक्षित डेयरी उत्पादों के उत्पादन के लिये एक व्यापक रणनीति की आवश्यकता है। इसके लिये उपयुक्त कानूनी ढाँचा भी बनाना चाहिये।
  - इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे की कमी को दूर करने और बिजली की कमी को दूर करने के लिये, सौर ऊर्जा संचालित डेयरी प्रसंस्करण इकाइयों में निवेश करने की आवश्यकता है।
  - साथ ही डेयरी सहकारिता को मजबूत करने की जरूरत है। इस प्रयास में, सरकार को किसान उत्पादक संगठनों को बढ़ावा देना चाहिये।

निष्कर्ष

पिछले कुछ दशकों में डेयरी क्षेत्र भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा के रूप में उभरा है। हालाँकि दूध और दुग्ध उत्पादों की उच्च कीमत में अस्थिरता को देखते हुए डेयरी क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सबसे कमजोर क्षेत्रों में से एक बन गया है।

इसलिये किसानों और उपभोक्ताओं दोनों के लिये डेयरी क्षेत्रों के महत्त्व को देखते हुए इस संकट को दूर करने और क्षेत्र के समग्र विकास हेतु एक समग्र ढाँचा स्थापित करने के लिये विभिन्न स्तरों पर कार्य करने की आवश्यकता है।

नोट :

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

भारत एवं पश्चिमी देशों के मध्य संबंध

संदर्भ

हाल ही में भारत ने विदेश नीति के क्षेत्र में दो बड़े फैसला लिया है- ब्रेक्ज़िट के बाद ब्रिटेन के साथ के संबंधों को मज़बूत करने का एवं भारत-यूरोप संबंधों को फिर से मज़बूती प्रदान करने का।

ज्ञातव्य है कि दोनों संबंधों का आधार बेहतर व्यापार है। भारत द्वारा वर्ष 2019 में क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी (Regional Comprehensive Economic Partnership- RCEP) से बाहर निकलने का निर्णय लेने के बाद यह महत्त्वपूर्ण है। यह निर्णय आत्मनिर्भर भारत की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा भारत और अमेरिका एक मिनी ट्रेड डील पर भी बातचीत कर रहे हैं।

व्यापार समझौतों के अलावा, यूरोपीय संघ, ब्रिटेन और अमेरिका के साथ भारत का रणनीतिक जुड़ाव पश्चिम के साथ इसके बढ़ते संबंधों का प्रतीक है। भारत और पश्चिम के बीच यह मज़बूत संबंध चीन के उदय का परिणाम है।

इस परिदृश्य में जहाँ वैश्विक अर्थव्यवस्था महामारी की चपेट में आ गई है, भारत को उन सुधारों पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिये जो पश्चिमी देशों के साथ संबंधों को स्थायित्व प्रदान करते हैं।

भारत एवं पश्चिमी देशों के मध्य संबंध

- ब्रेक्ज़िट के बाद तेज़ी से संबंधों में सुधार करना: ब्रेक्ज़िट का लाभ उठाते हुए, भारत और ब्रिटेन के मध्य संबंधों की शुरुआत बाज़ार तक पहुँच एवं विश्वास-निर्माण उपायों (Confidence-building measures) के साथ करते हुए मुक्त-व्यापार समझौते (Free-Trade Agreement) तक पहुँचना चाहिये।
- भारत-यूरोपीय संघ के संबंधों को फिर से मज़बूत करना: हाल ही में आयोजित एक आभासी शिखर सम्मेलन में, भारत और यूरोपीय संघ ने एक व्यापक व्यापार समझौते के लिये बातचीत फिर से शुरू करने का फैसला किया है।
  - इसके अलावा शिखर सम्मेलन में डिजिटल, ऊर्जा, परिवहन एवं दोनों पक्षों के लोगों के बीच एक महत्त्वाकांक्षी 'कनेक्टिविटी साझेदारी' की शुरुआत हुई है जिसके तहत दोनों देश अफ्रीका, मध्य एशिया से लेकर हिंद-प्रशांत क्षेत्र तक फैले क्षेत्रों में स्थायी संयुक्त परियोजनाओं को आगे बढ़ाने में सहयोग करेंगे।
- यूरोपीय देशों के साथ जुड़ाव: वर्षों से भारत ने यूरोपीय संघ के स्थान पर फ्राँस, जर्मनी, ब्रिटेन आदि के साथ स्वतंत्र संबंधों को प्राथमिकता दी है।
  - उदाहरण के लिये, फ्राँस यूरोप में भारत का गो-टू पार्टनर बन गया है जिसके साथ रक्षा, सामरिक, परमाणु और बहुपक्षीय क्षेत्रों में इतने समझौते हुए हैं कि वह रूस की जगह भी ले सकता है।
  - स्मार्ट सिटी, 5G, AI और सेमीकंडक्टर्स जैसे क्षेत्रों में नॉर्डिक देश भारत की पहली पसंद हैं।
  - इसके अलावा, स्वच्छ पानी, स्वच्छता और स्मार्ट शहरों जैसे मुद्दों पर भारत की दिलचस्पी स्वाभाविक रूप से यूरोपीय देशों की ओर बढ़ी है।
- क्वाड: क्वाड के सदस्य के रूप में एवं हिन्द- प्रशांत के भू-राजनीति के केंद्र में होने के कारण भारत पश्चिमी देशों के रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण है।

चुनौतियाँ

- दृढ़ यूरोपीय संघ: दोनों पक्षों के निहित स्वार्थों के कारण ब्रिटेन के साथ बहुत तेज़ी से समझौते होने की संभावना है। हालाँकि, यूरोपीय संघ बहुत अधिक दृढ़ रहता है एवं उसकी मांग भी तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

नोट :

- चीन का विश्व शक्ति के रूप में उदय: अमेरिका और यूरोप ने चीन के विकास में सामूहिक रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनका विचार था कि एक समृद्ध चीन अधिक लोकतांत्रिक देश बनेगा न कि तानाशाही के मार्ग पर चलने वाला। आज चीन की कार्रवाई इन देशों के लिये एक प्रमुख रणनीतिक चुनौती है। इसलिये भारत को यह उम्मीद नहीं करनी चाहिये कि यूरोपीय संघ, अमेरिका और ब्रिटेन के साथ इसके जुड़ाव के परिणामस्वरूप वैश्विक स्थितियों में बहुत अधिक परिवर्तन होगा।
- चीन का प्रतिरोध: चीन क्वाड को एक छोटे भू-राजनीतिक समूह के रूप में देखता है जो एशिया को विभाजित करना चाहता है और चीन को अलग-थलग करना चाहता है।
  - इस कारण, किसी भी एशियाई गठबंधन के उदय को रोकना अब चीन के लिये सर्वोच्च रणनीतिक प्राथमिकता है।

आगे की राह

- घरेलू सहमति: भारत और पश्चिमी देशों के बीच घनिष्ठ संबंध के लिये, भारत को आपूर्ति-शृंखला के अंतराल को भरना चाहिये और बड़े मुद्दों जैसे- वस्तु एवं सेवाएँ, कृषि, सरकारी खरीद, अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता आदि पर घरेलू सहमति का निर्माण करना चाहिये।
- अन्य शक्तियों के साथ संबंध: भारत को अन्य शक्तियों, जैसे- बहुपक्षीय समूहों के नेटवर्क के साथ, भारत-ऑस्ट्रेलिया-जापान मंच और फ्राँस तथा ऑस्ट्रेलिया के साथ त्रिपक्षीय वार्ता एवं अमेरिका के साथ अपनी साझेदारी को विकसित करना चाहिये।
- प्राकृतिक संबंध: भारत पहले से ही एक मज़बूत लोकतंत्र और एक बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था है।
- इसके अलावा भारत अपनी खूबियों जैसे- प्रौद्योगिकी विकास, 21वीं सदी की प्रतिभाओं का पश्चिम की तरफ झुकाव; जलवायु परिवर्तन के प्रति सकारात्मक सोच का उपयोग पश्चिमी देशों के साथ अपने संबंधों को मज़बूत करने के लिये कर सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय दृष्टिकोण से पश्चिमी देशों का सहयोग क्षेत्रीय स्थिरता प्रदान कर सकता है, शांति को बढ़ावा दे सकता है, आर्थिक विकास ला सकता है और सतत् विकास को आगे बढ़ा सकता है।

भारत अफ्रीका कूटनीतिक संबंध

वैक्सीन-मैत्री कूटनीति के तहत भारत सरकार ने कई विकासशील और अल्प-विकसित देशों को वैक्सीन देने का वादा किया साथ ही, कोविड-19 टीकों का प्रमुख वैश्विक आपूर्तिकर्त्ता बनने का लक्ष्य रखा।

इस प्रतिज्ञा के साथ भारत दक्षिण एशिया में पड़ोसियों की सहायता करने के साथ ही अफ्रीकी महाद्वीप को 10 मिलियन वैक्सीन खुराक प्रदान कर रहा है।

हालाँकि भारत में कोविड-19 की दूसरी लहर से होने वाली तबाही के कारण सरकार की वैक्सीन-मैत्री कूटनीति की बेहद आलोचना हुई है। इसका भारत-अफ्रीका कूटनीति पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

भारत-अफ्रीका संबंध

- विदेश नीति: स्वतंत्रता के बाद भारत की विदेश नीति ने अफ्रीकी उपनिवेशवाद आंदोलनों को काफी प्रभावित किया।
  - वर्ष 1955 के बांडुंग सम्मेलन (Bandung Conference) में भारत ने पहली बार एशियाई और अफ्रीकी देशों को साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ साथ आने का आह्वान किया।
  - इसके बाद ही साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ भारत की भूमिका को चिह्नित किया गया।
  - इसके अलावा गुटनिरपेक्ष आंदोलन के बाद भारत ने कई अफ्रीकी देशों के साथ संबंध स्थापित किये।
- पीपल-टू-पीपल (People-to-People) संबंध: ऐतिहासिक रूप से भारतीय व्यापारी पूर्वी-अफ्रीकी तट पर नियमित रूप से यात्रा करते थे एवं बंदरगाहों में स्थानीय निवासियों के साथ संबंध स्थापित करते थे। इस प्रकार अफ्रीका में भारतीय पारिवारिक व्यवसायों की स्थापना हुई जिनमें से कुछ आज भी मौजूद हैं।
  - एक प्रभावशाली भारतीय डायस्पोरा की उपस्थिति के कारण कई अफ्रीकी देशों के साथ भारत के सकारात्मक संबंध कायम हैं।

नोट :

- चीनी प्रभाव से मुकाबला: ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक और पीपल-टू-पीपल (People-to-People) संबंधों के माध्यम से अफ्रीका में भारत की मौजूदा सामाजिक पूंजी (Social Capital) के कारण अफ्रीकी देशों द्वारा चीन के मुकाबले भारत को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

अफ्रीका में चीनी चुनौती

- अफ्रीकी देशों में भारत की मौजूदा सामाजिक पूंजी के बावजूद भौतिक संसाधनों के मामले में भारत चीन से पीछे है। अफ्रीका के आर्थिक क्षेत्र में चीन के द्वारा किये जा रहे निवेश भारत के मुकाबले कहीं अधिक हैं।
- अफ्रीका में लगभग 10,000 से अधिक चीनी कंपनियाँ कार्य कर रही हैं और चीन अफ्रीका का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बन गया है।
- बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (Belt and Road Initiative- BRI) परियोजनाओं के ज़रिये चीन अनिवार्य रूप से अफ्रीकी देशों के लिये विकास का एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहा है।

आगे की राह: भारत-अफ्रीका संबंधों में नए अवसर

- भारत एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में: चीन अफ्रीका में सक्रिय रूप से चेकबुक एवं दान कूटनीति (Chequebook and Donation Diplomacy) का अनुसरण कर रहा है।
  - हालाँकि चीनी निवेश को नव-औपनिवेशिक प्रकृति के रूप में देखा जाता है।
  - दूसरी ओर भारत का लक्ष्य स्थानीय क्षमताओं के निर्माण और अफ्रीकियों के साथ समान भागीदारी के ज़रिये अफ्रीका को प्रगति के पथ पर अग्रसर करना है न कि केवल अफ्रीकी अभिजात वर्ग के साथ आगे बढ़ना।
  - ज्ञातव्य है कि अफ्रीका चीन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ है किंतु, वह चाहता है कि भारत एक संतुलनकारी शक्ति और सुरक्षा प्रदाता के रूप में कार्य करे।
- रणनीतिक सहयोग: एशिया-अफ्रीका ग्रोथ कॉरिडोर के माध्यम से अफ्रीका के विकास के लिये साझेदारी बनाने में भारत और जापान दोनों के साझा हित निहित हैं।
  - इस संदर्भ में भारत अफ्रीका को वैश्विक राजनीति में रणनीतिक रूप से स्थापित करने के लिये अपनी वैश्विक स्थिति का लाभ उठा सकता है।
- विकासशील दुनिया को नेतृत्व प्रदान करना: जिस तरह भारत और अफ्रीका ने एक साथ उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी, दोनों अब एक न्यायसंगत लोकतांत्रिक वैश्विक व्यवस्था के लिये भी एक साथ सहयोग कर सकते हैं। इसमें अफ्रीका और भारत में रहने वाली लगभग एक तिहाई जनसंख्या शामिल है।
- वैश्विक प्रतिद्वंद्विता को रोकना: हाल के वर्षों में कई वैश्विक आर्थिक अग्रणियों ने ऊर्जा, खनन, बुनियादी ढाँचे और कनेक्टिविटी सहित बढ़ते आर्थिक अवसरों की दृष्टि से अफ्रीकी देशों के साथ अपने संपर्क को मज़बूत किया है।
  - जैसे-जैसे अफ्रीका मे वैश्विक हित बढ़ता है, भारत और अफ्रीका यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि अफ्रीका एक बार फिर प्रतिद्वंद्वी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले क्षेत्र में न बदल जाए।

निष्कर्ष

अफ्रीका को प्रगति की राह पर चलने में मदद करने में भारत की आंतरिक रुचि है। हालाँकि यदि अफ्रीका में निवेश के मामले में भारत चीन का मुकाबला कर सकता तो आज परिस्थिति भारत के पक्ष में होती।

एक्ट ईस्ट पॉलिसी: कितनी सार्थक!

संदर्भ

नई दिल्ली के मुख्यमंत्री की हालिया टिप्पणी, जिसमें उन्होंने कोविड के सिंगापुर संस्करण के बारे में बात कही, के कारण, भारत और सिंगापुर का संबंध तनावपूर्ण हो गया है।

- हालाँकि विदेश मंत्रालय ने आलोचनात्मक टिप्पणियों को तुरंत खारिज कर दिया। साथ ही, कई भारतीय नीति निर्माताओं और विदेश नीति विश्लेषकों ने समग्र रूप से दक्षिण पूर्व एशिया में भारत के सामने अधिक बड़ी चुनौती पेश की।

नोट :

- पिछले पाँच वर्षों में तीन घटनाक्रम दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय कूटनीति की अग्निपरीक्षा ले रही हैं।
  - पहला, चीन की बढ़ती शक्तियों के साथ चीन-भारत के बढ़ते तनाव;
  - दूसरा, आर्थिक रूप से भारत के खराब प्रदर्शन से इस क्षेत्र में निराशा; और
  - तीसरा, इस क्षेत्र में अपने अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुसलमानों और ईसाइयों के प्रति भारत के दृष्टिकोण के कारण बढ़ती चिंता।

ये घटनाक्रम एक तरह से घरेलू राजनीति की समीक्षा करते हैं और यह भारत की एक्ट ईस्ट नीति को प्रभावित कर रहे हैं।

एक्ट ईस्ट पॉलिसी का विकास

- वर्ष 1992 के बाद जब प्रधान मंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने दक्षिण-पूर्व एशिया के लिये "पूर्व की ओर देखो नीति" की घोषणा की तब से भारत इस क्षेत्र के साथ सभी मोर्चों जैसे - राजनयिक और सुरक्षा, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर साथ खड़ा रहा है।
- प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह ने नरसिम्हा राव द्वारा स्थापित की नींव पर निर्माण किया और दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान) के साथ एक मजबूत संबंध बनाया। यह संबंध इतना प्रगाढ़ हुआ कि वर्ष 2007 में सिंगापुर के संस्थापक-संरक्षक, ली कुआन यू, जो भारत के प्रति एक लंबे समय से संशयवादी थे, ने चीन और भारत को एशियाई आर्थिक विकास का दो इंजन बताया।
- इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए, वर्तमान प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने 'लुक ईस्ट' को 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी में रूपांतरित कर दिया।

एक्ट ईस्ट पॉलिसी की हालिया चुनौतियाँ

- आर्थिक स्तर पर भारत का कमज़ोर प्रदर्शन: वर्ष 2008-09 के ट्रांस-अटलांटिक वित्तीय संकट के बाद से चीन की त्वरित वृद्धि और बढ़ती मुखरता ने शुरू में इस क्षेत्र में भारत के लिये मजबूत समर्थन की भावना उत्पन्न की, जिसमें कई आसियान देश चाहते थे कि भारत चीन की बढ़ी हुई शक्ति को संतुलित करे।
  - हालाँकि, क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP) समझौते से बाहर रहने के निर्णय एवं भारत की घरेलू आर्थिक मंदी ने क्षेत्र के देशों को निराश किया।
- हिंदू बहुसंख्यकवाद के बारे में चिंताएँ: अधिकांश आसियान देशों की जनसंख्या नृजातीय चीनी, इस्लाम, बौद्ध या ईसाई धर्म का पालन करते हैं।
  - भारत में हिंदू बहुसंख्यकवाद के बारे में बढ़ती चिंता ने इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड और सिंगापुर जैसे देशों में नागरिक समाज के रवैये को प्रभावित किया है।
  - इसके अलावा, भारत ने "बौद्ध कूटनीति" को सॉफ्ट पावर रूप में आगे बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन इस क्षेत्र में अंतर-धार्मिक तनाव बढ़ने के कारण इसकी तरफ आसियान देशों का आकर्षण अधिक नहीं हुआ है।
- कोविड -19 महामारी का प्रभाव: महामारी की चुनौती को चीन ने कुशलता से संभाला है जबकि भारत में स्थिति बिगड़ती जा रही है।
  - इस कारण क्षेत्र के नृजातीय चीनी समुदायों और चीन के प्रति आसियान देशों में तेज़ी से उदार दृष्टिकोण का विकास हो रहा है एवं इन देशों में चीन समर्थक भावना उत्पन्न हुई है।
- संयुक्त प्रभाव: इन सभी घटनाक्रमों ने भारत और आसियान के बीच व्यापार-से-व्यवसाय (B2B) और लोगों से लोगों (P2P) के संबंध को कमज़ोर कर दिया, बावजूद इसके कि सरकार-से-सरकार (G2G) के संबंध को बनाए रखने के लिये राजनयिकों ने बहुत प्रयास किया है।

आगे की राह

- RCEP में लिये गए निर्णय की समीक्षा: भारत की आर्थिक शक्ति और बाज़ार का महत्त्व स्वीकार करते हुए, आरसीईपी सदस्यों ने भारत को पर्यवेक्षक सदस्य बनने के लिये आमंत्रित किया है और इसमें शामिल होने के लिये दरवाज़ा खुला छोड़ दिया है।
  - वर्तमान समय और निकट भविष्य में वैश्विक आर्थिक परिदृश्य को देखते हुए, RCEP पर अपनी स्थिति की निष्पक्ष समीक्षा करना और संरचनात्मक सुधार करना भारत के हित में होगा।
- सॉफ्ट पावर का लाभ उठाना: एक्ट ईस्ट पॉलिसी का पालन करते हुए सांस्कृतिक संबंध बनाए रखने में भारत का विशिष्ट लाभ हैं।
  - इस प्रकार, नीति निर्माताओं को ऐसी नीतियों से बचना चाहिये जो प्रकृति में बहुसंख्यकवादी प्रतीत होती हैं।

नोट :

- चीन से प्रतिस्पर्द्धा: जिस तरह चीन हिंद महासागर में अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है, उसी तरह भारत को भी दक्षिण चीन सागर में अपनी भागीदारी बढ़ानी चाहिये।
  - इस संदर्भ में क्वाड और आसियान देशों के साथ भारत का जुड़ाव सही दिशा में एक कदम है।
  - हाल ही में भारतीय प्रधान मंत्री ने सुरक्षित एवं स्थिर समुद्री क्षेत्र के लिये "सागर (क्षेत्र में सभी के लिये सुरक्षा एवं विकास) (Security and Growth for All in the Region- SAGAR)) पहल" का प्रस्ताव रखा। यह समुद्र में आपदा के रोकथाम और संसाधनों का सतत उपयोग को बढ़ावा देते हुए समुद्री सुरक्षा बढ़ाने में इच्छुक राज्यों के बीच साझेदारी बनाने पर केंद्रित है।

निष्कर्ष

हाल के रुझानों से पता चलता है कि एक्ट ईस्ट पॉलिसी में निहित बेहतरीन इरादों के बावजूद, दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत की स्थिति और छवि को नुकसान पहुँचा है। इसलिये भारतीय कूटनीति को अपनी एक्ट ईस्ट नीति पर नए सिरे से विचार करना चाहिये।

दृष्टि The Vision

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

सूचना प्रौद्योगिकी नियम, 2021

संदर्भ

भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती संस्थानों के लिये दिशा-निर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम, 2021 को फरवरी 2021 में अधिसूचित किया। इस नियम के तहत सोशल मीडिया मध्यस्थों या प्लेटफॉर्म को तीन महीने के अंदर नियमों का पालन करना आवश्यक था, जिसकी अंतिम तिथि 25 मई को थी।

- अब तक लगभग सभी प्रमुख सोशल मीडिया मध्यस्थों ने सभी पूर्व आवश्यक शर्तों का पालन नहीं किया है।
- इन शर्तों का अनुपालन न करने से स्थितियाँ केवल बिगड़ सकती हैं, खासकर ऐसी स्थिति में जिसमें ट्विटर और सरकार जैसे कुछ प्लेटफॉर्म के मध्य संबंध बिगड़ रहे हैं।
- जबकि उक्त दिशानिर्देशों के कुछ सकारात्मक पहलू हैं, तो कुछ स्पष्ट अस्पष्टताएँ और सीमाएँ हैं जो लोकतंत्र और संवैधानिक मूल्यों के मूल सिद्धांतों के विपरीत प्रतीत होती हैं।

सकारात्मक पहलू

- ये नियम कुछ कर्तव्यों को अनिवार्य बनाते हैं जैसे:
  - 24 घंटे के भीतर गैर-सहमति वाली अंतरंग तस्वीरों को हटाना,
  - पारदर्शिता बढ़ाने के लिये अनुपालन रिपोर्ट का प्रकाशन,
  - सामग्री हटाने के लिये विवाद समाधान तंत्र स्थापित करना,
  - उपयोगकर्त्ताओं को यह जानने के लिये जानकारी में एक लेबल जोड़ना कि सामग्री विज्ञापित, स्वामित्व, प्रायोजित या विशेष रूप से नियंत्रित है या नहीं।

इससे जुड़ी चुनौतियाँ

- ऐसे अधिकार जो आईटी अधिनियम के दायरे से परे है: यह चिंता का विषय है कि बिना विधायी कार्रवाई के सूचना एवं प्रौद्योगिकी (Information Technology) अधिनियम, 2000 के दायरे का विस्तार कर डिजिटल समाचार मीडिया को इसके अंतर्गत ला दिया गया है।
  - ऐसे कई नए नियमों को लाने के कारण इसकी आलोचना की गई है, जिन्हें सामान्य रूप से केवल विधायी कार्रवाई के माध्यम से लाया जाना चाहिये।
- उचित रूप से मध्यस्थता या विवाद निवारण तंत्र का न होना: किसी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को अब सरकार से आदेश प्राप्त होने के 36 घंटे के भीतर सामग्री को हटाना होगा।
  - एक समय-सीमा के अंदर सरकार के आदेश से असहमत होने की स्थिति में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स को उचित रूप से मध्यस्थता का कोई प्रावधान नहीं है।
- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े मुद्दे: इन नियमों के तहत ऑनलाइन आपत्तिजनक सामग्री का अंतिम निर्णायक सरकार है। अत: इससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रभावित होती है।
- ट्रेसबिलिटी (Traceability) का मुद्दा: अब तक सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के पास यह अधिकार है कि उपयोगकर्त्ताओं को एंड-टू-एंड एन्क्रिप्शन (End to End Encryption) की सुविधा प्राप्त होती है, जिससे बिचौलियों के पास उनकी जानकारी नहीं पहुँचती है।

नोट :

- ट्रेसबिलिटी की इस अनिवार्य आवश्यकता को लागू करने से सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स का यह अधिकार समाप्त हो जाएगा, जिससे इन वार्तालापों की गोपनीयता की सुरक्षा कम हो जाएगी।

- डेटा गोपनीयता कानून की अनुपस्थिति: डेटा गोपनीयता कानून का न होना उस देश में घातक साबित हो सकता है जहाँ नागरिकों के पास अभी भी किसी भी पार्टी द्वारा गोपनियता भंग करने के पश्चात् खुद को बचाने के लिये डेटा गोपनीयता कानून नहीं है।
- अनुपालन बोझ: ये नियम मध्यस्थों के लिये भारतीय नोडल अधिकारियों, अनुपालन अधिकारियों और शिकायत अधिकारियों को काम पर रखने की आवश्यकता के कारण निरर्थक अतिरिक्त परिचालन लागत पैदा करते हैं।
  - यह कई छोटी डिजिटल संस्थाओं के पक्ष में नहीं हो सकता है और सभी प्रकार के हस्तक्षेपों की संभावना बढ़ सकती है।

आगे की राह

- कानून का एक समान अनुप्रयोग: कानून के अनुप्रयोग सभी के लिये एक समान होगा। कोई भी प्लेटफार्म इसका अपवाद नहीं होगा।
  - इसके अलावा गैरकानूनी सामग्री से निपटने के लिये कानून पहले से ही मौजूद हैं। आवश्यकता है उनके एकसमान अनुप्रयोग की।
- हितधारकों के साथ विचार-विमर्श: नए नियमों के साथ कई समस्याएँ हैं, लेकिन प्रमुख मुद्दा यह था कि इन्हें बिना किसी सार्वजनिक चर्चा के पेश किया गया था। इसके समाधान का बेहतर तरीका है कि इससे जुड़ा एक श्वेत पत्र पुन: जारी किया जाना चाहिये।
- वैधानिक समर्थन: उसके बाद भी यदि इसका विनियमन आवश्यक समझा जाता है तो इसे कानून के माध्यम से लागू किया जाना चाहिये। इसके लिये कार्यकारी शक्तियों पर भरोसा करने के बजाय संसद में के ज़रिये लाया जाना चाहिये।
- डेटा संरक्षण कानून में मजबूती लाना: किसी भी प्लेटफॉर्म के साथ अधिक जानकारी साझा करना उस देश में खतरनाक साबित हो सकता है जहाँ नागरिकों के पास अभी भी किसी भी पार्टी द्वारा गोपनीयता भंग करने पर खुद को बचाने के लिये डेटा गोपनीयता कानून नहीं है।
  - इस संदर्भ में व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक, 2019 को जल्द पारित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

जीवन बीमा निगम बनाम प्रो. मनुभाई डी. शाह (1992) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता को किसी भी लोकतांत्रिक संस्था की जीवन रेखा बताया था।

इस संदर्भ में सीआईआई, फिक्की और यूएस-इंडिया बिजनेस काउंसिल सहित पाँच औद्योगिक निकायों ने इन नियमों के अनुपालन करने की समय सीमा को 6-12 महीने विस्तृत करने की मांग की है। यह सरकार के लिये औद्योगिक इकाई की बात सुनने और बिना बीच का रास्ता निकाले नियम बनाने के अपने तरीके को बदलने का एक अवसर है।

नोट :

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण

पर्यावरणीय कर

संदर्भ

पर्यावरणीय चुनौतियाँ के कारण सरकारों पर आर्थिक विकास से पर्यावरण को होने वाली क्षति को कम करने के तरीके खोजने का दबाव बढ़ रहा है। कोविड-19 महामारी ने दुनिया भर के देशों को जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता पर पुनर्विचार करने के लिये भी मजबूर किया है।

इस संदर्भ में 'पर्यावरणीय कर' पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले पदार्थों पर कर लागू करने से संबंधित एक नया विचार है, जिसका अंतिम उद्देश्य प्रदूषण में पर्याप्त कमी करना है।

भारत वर्तमान में प्रदूषण से निपटने के लिये कमांड-एंड-कंट्रोल दृष्टिकोण पर प्रमुख रूप से ध्यान केंद्रित कर रहा है। भारत में पर्यावरणीय कर की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि यह कितनी अच्छी तरह नियोजित और डिज़ाइन की गई है।

पर्यावरणीय कर और लाभ

- उद्देश्य: पर्यावरणीय करों का उद्देश्य हानिकारक पदार्थों के उपयोग या खपत की मात्रा को कम करना है।
- घटक: पर्यावरणीय कर सुधारों में आम तौर पर तीन पूरक गतिविधियाँ शामिल होती हैं:
  - पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव डालने वाली मौजूदा सब्सिडी और करों को समाप्त करना।
  - पर्यावरण के अनुकूल तरीके से मौजूदा करों का पुनर्गठन।
  - नए पर्यावरणीय करों की शुरुआत।
- तर्क: जिस तरह सार्वजनिक वस्तु के रूप में 'पर्यावरण' का प्रचार किया जा रहा है; सभी सार्वजनिक वस्तुओं की तरह पर्यावरण से संबंधित खर्च का वित्तपोषण भी पर्यावरणीय करों सहित करों के सामान्य पूल से होना चाहिये।
- इच्छित लाभ: भारत में एक पर्यावरणीय कर के कार्यान्वयन के व्यापक लाभ होंगे:
  - पर्यावरण: यह प्रदूषणकारी पदार्थों की लागतों को बढ़ाकर निवेशकों को उचित पर्यावरणीय निर्णय लेने के लिये बाध्य कर सकता है और इस प्रकार प्रदूषणकारी गतिविधियाँ कम की जा सकती है।
  - वित्त: पर्यावरणीय कर सुधार से बुनियादी सार्वजनिक सेवाओं के वित्तपोषण के लिये राजस्व जुटा सकते हैं, जबकि अन्य स्रोतों के माध्यम से राजस्व जुटाना मुश्किल या बोझिल साबित होता है।

भारत में पर्यावरणीय कर की स्थिति:

- वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के तहत कोई भी संस्था जो गैर-वन उद्देश्यों के लिये वन भूमि का उपयोग करती है, उसे गैर-वन या रिक्त भूमि में वनीकरण के लिये वित्तीय मुआवज़ा प्रदान करना आवश्यक है।
- वर्ष 2002 में सर्वोच्च न्यायलय ने निर्देश दिया था कि उपर्युक्त धन के प्रबंधन के लिये एक प्रतिपूरक वनीकरण कोष (CAF) बनाया जाना चाहिये।
- इसी तरह भारत का स्वच्छ पर्यावरण उपकर या कोयला उपकर कार्बन टैक्स के रूप में है।
- कोयला, लिग्नाइट और पीट पर 400 रुपये प्रति टन की दर से कोयला उपकर लगाया जाता है और इससे जुटाई गई धनराशि का प्रबंधन राष्ट्रीय स्वच्छ पर्यावरण कोष द्वारा किया जाता है।

संबंधित चुनौतियाँ

- मुद्रास्फीति प्रभाव: पर्यावरणीय कर लागू करने से निजी क्षेत्र की उत्पादकता में धीमी वृद्धि और लागत में अधिक वृद्धि हो सकती है। जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में वृद्धि हो सकती है।

नोट :

- निधियों का बँटवारा: पर्यावरणीय उद्देश्यों के लिये लगाए जाने वाले करों का एक बड़ा हिस्सा किसी और मद में खर्च किया जा रहा है या अप्रयुक्त पड़ा हुआ है।
  - अधिकांश देशों में जीडीपी पर इसका नगण्य प्रभाव दिखता है, हालाँकि इस तरह के राजस्व का उपयोग पर्यावरण से जुड़े कार्य में किया जा रहा हो यह ज़रूरी नहीं है।
- प्रतिस्पर्द्धात्मकता को प्रभावित करना: एक देश या क्षेत्र के भीतर एक उत्पादक के लिये विशेष कर की उपस्थिति जो उस देश या क्षेत्र के बाहर के उत्पादकों पर लागू नहीं होती है, निश्चित रूप से स्थानीय उत्पादकों की प्रतिस्पर्द्धात्मकता पर प्रभाव डाल सकती है।

आगे की राह

- संभावनाओं का आकलन: पर्यावरणीय कर की दर वस्तु और सेवाओं के उत्पादन, उपभोग या निपटान से पड़ने वाले नकारात्मक असर के सीमांत सामाजिक लागत के बराबर होनी चाहिये।
  - इसके लिये वैज्ञानिक आकलन के आधार पर पर्यावरण को हुए नुकसान के मूल्यांकन की आवश्यकता है।
- राजस्व का उपयोग: भारत जैसे विकासशील देशों में राजस्व का उपयोग अधिक-से-अधिक पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करने के लिये किया जा सकता है।
- प्रमुख क्षेत्रों को लक्षित करना: भारत में पर्यावरणीय कर लागू करने हेतु तीन मुख्य क्षेत्रों को लक्षित किया जा सकता है-
  - परिवहन क्षेत्र में वाहनों का कराधान विशुद्ध रूप से ईंधन दक्षता और जीपीएस आधारित होना चाहिये;
  - ऊर्जा क्षेत्र में ऊर्जा उत्पादन हेतु प्रयुक्त ईंधन पर कर लगाना;
  - अपशिष्ट उत्पादन और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग।
- पर्यावरण-राजकोषीय सुधार: मद्रास स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स द्वारा अपने अध्ययन के अनुसार वस्तु और सेवा कर ढाँचे में पर्यावरणीय करों को शामिल करने की भी आवश्यकता है।

निष्कर्ष

प्रदूषण नियंत्रण और प्रबंधन के बारे में नागरिकों को संवेदनशील बनाने के लिये हरित करों को लागू करना एक निवारक उपाय होगा। अत: भारत के लिये पर्यावरणीय वित्तीय सुधारों को अपनाने का यह सही समय है।

नोट :

सामाजिक न्याय

महामारी एवं इन्फोडेमिक

संदर्भ

कोविड-19 इतिहास की पहली महामारी है जहाँ प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। साथ ही, इससे स्वास्थ्य संबंधी अफवाहों का व्यापक प्रसार हुआ है, जिससे विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) को भी महामारी को "इन्फोडेमिक" कहने के लिये प्रेरित किया गया है।

- इन्फोडेमिक (Infodemic) सूचनाओं की अधिकता है। इसमें लोगों के लिये झूठे या भ्रामक स्रोतों के बीच सच्चे और भरोसेमंद स्रोतों की पहचान करना मुश्किल होता है।
- वर्तमान आपातकाल की स्थिति में, विशेष रूप से, सोशल मीडिया पर स्वास्थ्य संबंधी जानकारी अक्सर प्रकाशित एवं साझा की जाती है। इसकी सत्यता अप्रमाणित होने के बाद भी गलत सूचनाओं और अफवाहों को आगे साझा किया जाता है।
- ऐसी ही एक अफवाह कोविड-19 वैक्सीन के बारे में है। इसके कारण लोगों का वैक्सीन लेने में हिचकिचाहट की समस्या को विश्व स्वास्थ संगठन द्वारा वैश्विक स्वास्थ्य के लिये शीर्ष 10 खतरों में से एक के रूप में नामित किया गया था।

महामारी और इन्फोडेमिक का आपस में संबंध

- परिस्थितियों में बदलाव: प्रिंट और प्रसारण मीडिया के वर्चस्व वाले 20वीं सदी के पारिस्थितिकी तंत्र से तेज़ी से बदलाव हुआ एवं अभी डिजिटल, मोबाइल एवं सोशल मीडिया का प्रभुत्व है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर फिल्टरिंग की कमी किसी भी प्रमाणीकरण तंत्र से विश्वास कम करती है।
- सूचना का संज्ञानात्मक भार: महामारी भ्रम, अस्पष्टता, चिंता और अनिश्चितता को जन्म देती है, जिस कारण स्वास्थ्य संबंधी अफवाहों को बढ़ावा मिलता है।
  - लोगों द्वारा स्रोत की सटीकता, सत्यता और विश्वसनीयता को नज़रअंदाज कर दिया जाता है, खासकर सोशल मीडिया पर जहाँ उपयोगकर्त्ता के पास पहले से ही बहुत अधिक जानकारी है।
- जनता का संघर्ष तंत्र: कई अध्ययनों में पाया गया है कि संकट के दौरान (जैसे प्राकृतिक आपदा, आतंकी हमला, वैश्विक महामारी), अफवाहें साझा करना एक संघर्ष तंत्र की तरह कार्य करता है।
  - इससे लोगों को राहत का भ्रम होता है, जैसे कि अनिश्चित स्थिति से जुड़ी चिंता या भय क्षण भर के लिये कम हो जाता है।
  - हालाँकि पूर्व शोध से पता चलता है कि महामारी के दौरान लंबे समय तक स्वास्थ्य से जुड़ी अफवाहें फैलने से नागरिकों में डर पैदा हो सकता है।
- नकारात्मक प्रभाव: भारत जैसे विकासशील देश में अफवाह का काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जैसे- स्वास्थ्य संस्थानों और विशेषज्ञों के प्रति अविश्वास, सामुदायिक प्रतिरक्षा से संबंधित गलतफहमी, तेज़ी से वैक्सीन विकास से संबंधित भय उपजा है।
  - ये कारक सोशल मीडिया पर व्यापक रूप से प्रसारित गलत सूचनाओं को पुष्टि करते हैं।

आगे की राह

- सोशल मीडिया की सकारात्मक भूमिका का लाभ उठाना: हालाँकि सोशल मीडिया खतरनाक अफवाह फैलाने के लिये एक उपजाऊ जमीन के रूप में कार्य कर रहा है लेकिन यह महत्त्वपूर्ण जानकारी के एक बेहतर स्रोत के रूप में कार्य कर सकता है।
  - इस प्रकार सरकारों और स्वास्थ्य एजेंसियों को गलत सूचनाओं को सत्यापित करने के लिये एक विश्वासप्रद पोर्टल की स्थापना करनी चाहिये।
  - इसके अलावा आकर्षक हस्तियाँ और सोशल मीडिया पर प्रभावी व्यक्तित्व लोगों को वैक्सीन लेने के लिये प्रेरित कर सकते हैं।

नोट :

- सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की ज़िम्मेदारी: फेसबुक, यूट्यूब और व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को ऐसी सुविधाओं से जोड़ने में सक्रिय होना चाहिये जो उपयोगकर्त्ताओं को सत्यापित जानकारी तक पहुँचने में मदद करे।
  - साथ ही, उन्हें गलत सूचनाओं को फिल्टर करने एवं स्वास्थ्य संबंधी अफवाहों को तेज़ी से दूर करने के अपने प्रयासों को दोगुना करना चाहिये।
- सूचना में स्वच्छता: हालाँकि कोविड-19 और सोशल मीडिया ने व्यक्तिगत स्वच्छता बनाए रखने के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। अब समाज में सूचना स्वच्छता के बारे में बातचीत होनी चाहिये। सूचना स्वच्छता में शामिल तत्त्व हैं:
  - तथ्य के प्रामाणिक स्रोत की पुष्टि करना।
  - कुछ फैक्ट चेकिंग वेबसाइट के साथ डबल चेकिंग।
  - विशेष मुद्दे पर कुछ विशेषज्ञ की राय लेना।
  - सोशल मीडिया पर फॉरवर्डेड न्यूज को देखते हुए तर्कसंगत सोच को लागू करना।
  - सूचना साझा करने से पहले उपर्युक्त विचारों को लागू करना।

निष्कर्ष

आज जबकि भारत का मुख्य संकट टीके की कमी है एवं इस पर डेटा अपर्याप्त है। आपूर्ति बढ़ने के साथ भी डेटा की अपर्याप्तता की भूमिका को अनदेखा करना एक गलती होगी।

ध्यान देने योग्य है कि चुनौती आपूर्ति को लेकर नही होगी, लेकिन यह सुनिश्चित करना होगा कि नागरिक यह समझें कि टीका कोविड-19 सबसे प्रभावी सुरक्षात्मक तंत्र है जो वर्तमान में ज्ञात और उपलब्ध है। अफवाहों पर विराम लगाना एक राष्ट्र के लिये अनिवार्य है।

नोट :

आंतरिक सुरक्षा

महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचों की सुरक्षा

हाल ही में साइबर हमले के ज़रिये संयुक्त राज्य अमेरिका की सबसे बड़ी पाइपलाइनों में से एक, कोलोनियल पाइपलाइन (Colonial Pipeline) को निष्क्रिय कर दिया गया। ज्ञातव्य है कि यह पाइपलाइन देश के पूर्वी तट पर खपत होने वाली ईंधन के लगभग 45% भाग की आपूर्ति करता है। इस हमले से जहाँ ईंधन की आपूर्ति बाधित हुई वहीं देश के कुछ हिस्सों में गैस की कीमतों में उछाल भी आया।

यह एक रैंसमवेयर हमला था, जहाँ हैकर्स आमतौर पर सिस्टम को ब्लॉक करने या लक्षित कंपनी या पीड़ित के गोपनीय डेटा को प्रकाशित करने की धमकी देते हैं, जब तक कि फिरौती (Ransom) का भुगतान नहीं किया जाता है।

कोलोनियल पाइपलाइन पर हमला हाल के वर्षों में ऐसे महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे पर साइबर हमलों का एक उदाहरण है, जिन्हें हर समय परिचालन की आवश्यकता होती है जैसे कि यातायात प्रणाली, बैंक, बिजली ग्रिड, तेल पाइपलाइन एवं परमाणु रिएक्टर।

महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे पर साइबर हमलों की बढ़ती संख्या को देखते हुए भारत जैसे देशों के लिये एक मज़बूत साइबर सुरक्षा संरचना विकसित करना आवश्यक हो गया है।

महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचा क्या है?

- महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचा नेटवर्क और परिसंपत्तियों का एक ऐसा तंत्र है, जिसे किसी राष्ट्र की सुरक्षा, उसकी अर्थव्यवस्था तथा जनता के स्वास्थ्य या सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिये निरंतर संचालित किये जाने की आवश्यकता है।

साइबर सुरक्षा फ्रेमवर्क की आवश्यकता

- महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचों पर बढ़ते हमले: हाल के वर्षों में महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे और व्यवसायों को निशाना बनाने वाले साइबर हमलों में वृद्धि हुई है।
  - इनमें वर्ष 2017 में WannaCry और NotPetya रैंसमवेयर हमले, यूक्रेन के पॉवर ग्रिड पर वर्ष 2015 का हमला और ईरानी परमाणु रिएक्टर पर वर्ष 2010 का Stuxnet हमला शामिल हैं।
  - वर्ष 2020 में चीन से संबंधित एक हैकर समूह RedEcho ने भारत के बिजली से जुड़े क्षेत्रों, बंदरगाहों एवं रेलवे के आधारभूत संरचनाओं के कुछ हिस्सों को निशाना बनाया।
- साइबर युद्ध: भू-राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिये एक देश द्वारा दूसरे देशों पर साइबर हमले किये जा रहे हैं। इसके अलावा ऐसे हमलों की ज़िम्मेदारी से बचने के लिये, कई राज्य प्रॉक्सी के रूप में हैकिंग सिंडिकेट का उपयोग करते हैं।
  - इन सभी कारणों को देखते हुए साइबर हमले से महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचों को सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी भारत की प्राथमिकता सूची में आ गई है।

संबंधित चुनौतियाँ

- सूचना साझा ना करना: महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे की सुरक्षा में एक बड़ी चुनौती निजी (और सार्वजनिक) क्षेत्र की कंपनियों द्वारा अपने सिस्टम की भेद्यता के बारे में जानकारी साझा करने में अनिच्छा जाहिर करना है।
  - क्योंकि उनका मानना है कि अपनी कमज़ोरियों एवं अपनी मालिकाना जानकारी का खुलासा कर वे अपने व्यवसायिक प्रतिद्वंद्वियों के साथ प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़ सकते हैं।
  - इस कारण भारतीय नियामकों ने चेतावनी दी है कि साइबर हमलों के लिये केवल प्रतिक्रियाशील उपायों द्वारा भारत के खिलाफ विरोधी देशों द्वारा साइबर युद्ध की संभावना की अनदेखी की जा रही है।
- क्षमताओं का आकलन: भारत में हार्डवेयर के साथ-साथ सॉफ्टवेयर साइबर सुरक्षा उपकरणों में स्वदेशीकरण का अभाव है। यह भारत के साइबर स्पेस को विरोधी देशों द्वारा प्रेरित या निजी साइबर हमलों के प्रति संवेदनशील बनाता है।

नोट :

- एक विश्वसनीय साइबर हमला प्रतिरोधी रणनीति का अभाव: इसके अलावा एक विश्वसनीय साइबर हमला प्रतिरोधी रणनीति की अनुपस्थिति का अर्थ है कि निजी और विरोधी देशों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों, जैसे- जासूसी, साइबर अपराध और यहाँ तक कि महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचा को क्षति पहुँचाने के लिये उचित प्रतिरोधी व्यवस्था का अभाव।

आगे की राह

- साइबर संघर्ष से जुड़ा सिद्धांत: साइबर संघर्ष से जुड़े एक ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता है, जो साइबर संघर्ष के प्रति अपने दृष्टिकोण को समग्र रूप से स्पष्ट करे। इसमें आक्रामक साइबर संचालन करने एवं साइबर हमलों से जुड़े विषय, उसके खिलाफ प्रतिवाद की सीमाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।
- वैश्विक बेंचमार्क स्थापित करना: अंतर्राष्ट्रीय कानून को साइबर स्पेस पर लागू करने के लिये राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा रणनीति को भारत द्वारा एक महत्त्वपूर्ण अवसर के रूप में देखना चाहिये।
  - यह वैश्विक चर्चा को भारत के रणनीतिक हितों और क्षमताओं की तरफ मोड़ सकता है।
- रेडलाइन निर्दिष्ट करना: राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा रणनीति में न केवल गैर-बाध्यकारी मानदंडों पर स्थिति स्पष्ट होनी चाहिये बल्कि, साइबर हमलावरों के निशाने पर रहने वाले क्षेत्र जैसे- स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली, बिजली ग्रिड, जल-आपूर्ति और वित्तीय प्रणाली के संबंध में 'रेड लाइन' पर कानूनी दायित्व भी शामिल होना चाहिये।
- स्वदेशीकरण को बढ़ावा देना: साइबर सुरक्षा और डिजिटल संचार की सुरक्षा के लिये सॉफ्टवेयर विकसित करने हेतु अवसर सृजित करने की आवश्यकता है।
  - भारत सरकार अपने मेक इन इंडिया कार्यक्रम में साइबर सुरक्षा संरचना को शामिल करने पर विचार कर सकती है।
  - साथ ही, भारतीय पैटर्न पर एक अद्वितीय तथा उपयुक्त हार्डवेयर बनाने की आवश्यकता है, जो स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा कर सके।
- सार्वजनिक-निजी भागीदारी: सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के आपसी अविश्वास और भेद्यता को देखते हुए, महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचों की सुरक्षा के लिये किसी भी समाधान में सार्वजनिक-निजी भागीदारी के माध्यम से ज़िम्मेदारियों साझा करना शामिल है।
  - इसके लिये एक संस्थागत ढाँचे का निर्माण, क्षमता का विस्तार, सुरक्षा मानकों और लेखाकर्म/ऑडिटिंग को सख्त बनाने तथा साइबर सुरक्षा घटनाओं की रिपोर्टिंग से संबंधित ढाँचे को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये।

निष्कर्ष

औद्योगिक क्रांति 4.0 के तहत प्रौद्योगिकी के भविष्य को देखते हुए महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे को साइबर हमले से बचाने हेतु एकीकृत एवं व्यापक तंत्र दृष्टिकोण ही सफल होगा।

नोट :